राजपूतों की उत्पत्ति

सन् 750 से 1200 के बीच का समय भारतीय इतिहास में अनेक राजवंशों के उत्थान और पतन का काल रहा है। इन राजवंशों में गुर्जर-प्रतीहार, चौहान, परमार, चालुक्य, चंदेल, गहड़वाल, गुहिल, तोमर आदि अधिकांश वंश राजपूत माने जाते हैं। राजपूतों की उत्पत्ति संबंधी ऐतिहासिक साक्ष्य पर विचार करते समय कुछ मूल लक्ष्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है : (1) विदेशी इतिहासकारों की धारणा, (2) भारतीय इतिहासकारों के विभिन्न मत, (3) जातियों के उत्कर्ष और अपकर्ष के पारंपरिक सिद्धांत का व्यावहारिक रूप, (4) राजनीतिक शक्तियों के उदय की जनजातीय पृष्ठभूमि, (5) क्षेत्र विशेष में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन तथा विकास की सहायक भूमिका।

यूरोप के अनेक इतिहासकारों ने राजपूतों को विदेशी मूल का प्रमाणित करने का प्रयास किया है। किसी हद तक इस प्रयास का प्रच्छन्न मंतव्य भारत में विदेशियों के शासन की परंपरा को पुष्ट करना भी हो सकता है। कर्नल टाड ने राजपूतों को शक, कुषाण तथा हूण आदि विदेशी शासकों के वंशजों से संबंधित माना है। टाड का तर्क है कि अश्वमेध यज्ञ, अश्व तथा शस्त्र पूजा, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति आदि में इन विदेशियों तथा राजपूतों में समानता के पर्याप्त तत्व मौजूद थे। विलियम कुक तथा वी० स्मिथ के अनुसार भी राजपूत वंशों की उत्पत्ति हूण आदि विदेशी जातियों से सबंधित है, विशेष रूप से गुर्जर लोग हूणों के समय में ही भारत आए थे और इनमें से कुछ परिवार राजपूत क्षत्रिय के रूप में भारतीय समाज में समाहित हो गए। कालांतर में उन्होंने प्राचीन भारतीय परंपरा के चंद्रवंशी तथा सूर्यवंशी क्षत्रियों से अपना संबंध स्थापित किया। कुक का मत टाड तथा स्मिथ के मत से मिलता जुलता है। स्मिथ की यह मान्यता भी है कि निचले सामाजिक दर्जे के क्षत्रिय, राजपूत शासकों के रूप में स्थापित हो गए थे।

भारतीय इतिहासकारों में ईश्वरी प्रसाद तथा डी० आर० भंडारकर यह मानते है कि भारतीय समाज में विदेशी मूल के लोगों के सम्मिलित होने से राजपूतों की उत्पत्ति हुई। भंडारकर ने एक सिक्के पर अंकित श्री वासुदेव बहमन के आधार पर तथा अन्य अनेक तर्कों के साथ चौहानों (चाहमानों) को ख़जर नामक विदेशी जाति के पुरोहित वर्ग का माना है।

इन इतिहासकारों के मत का विरोध करते हुए गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने राजपूतों को प्राचीन क्षत्रियों का वंशज प्रमाणित करने का प्रयास किया है। टाड के तर्क का खंडन करते हुए उन्होंने कहा है कि इस प्रकार के रीति-रिवाज विदेशियों में प्रचलित थे और विदेशी शासक वर्ग ने इन्हें क्षत्रियों से ग्रहण किया। ओझा का मत है कि राजपूत अपनी जातिगत विशिष्टताओं तथा शारीरिक संरचना में भी प्राचीन क्षत्रियों की संतान प्रतीत होते हैं।

इस संपूर्ण तर्क-वितर्क को हम एक अन्य पहलू से भी देख सकते हैं। जो विदेशी जातियां भारत आई थीं वे क्षत्रियों तथा राजपूतों के समान ही युद्धप्रिय और लड़ाकू जातियाँ थीं। शस्त्र और अश्व का महत्व तथा स्त्रियों की विशेष सामाजिक स्थिति इन सभी में एक-दूसरे के प्रभाव के बिना भी स्वतंत्र रूप से विद्यमान हो सकती है। इसलिए राजपूतों को विदेशी मूल का मानने के लिए इन रीति-रिवाजों के प्रभाव का तर्क कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं कर पाता है। किंतु ऐतिहासिक साक्ष्यों (विशेष रूप से अभिलेखों) से हमें हूण जाति के शासकों के राजपूत जाति में परिवर्तित होने के यथेष्ट प्रमाण मिलते है। उदाहरण के लिए, बनाफर राजपूतों में बनस्फर तथा तोमर राजपूतों को हूण तोरमाण से जोड़ा जाता है। ब्राह्मणों में शाकलद्वीपी ब्राह्मण ईरान के मग पुरोहितों की ही संतति हैं। इन उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है कि सभी राजपूत वंशों को विदेशी मूल का घोषित करना नितांत भ्रामक बात है।

राजपूतों की उत्पत्ति की समस्या के मूल में प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था का मानदंड किसी-न-किसी रूप में निहित है। इसी कारण से शास्त्रों की व्यवस्था के अंतर्गत हम पाते है कि क्षत्रिय जाति को ही राजसत्ता का अधिकारी माना गया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह भी है कि ब्राह्मण या पुरोहित ही इस व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। किंतु लोक-व्यवहार में किसी भी जाति का योग्य व्यक्ति राजनीतिक सत्ता संगठित कर सकता था या शासन का अधिकारी बन सकता था। महापद्मनंद, चंद्रगुप्त मौर्य, पुष्यमित्र शुंग आदि प्राचीन काल से ही ऐसे उदाहरण

प्रस्तुत करते हैं। मनु या याज्ञवल्क्य तथा इनके अनेक भाष्यकारों ने जात्युपकर्ष (निम्न जाति से ऊँची जाति में उठना) तथा जात्यपकर्ष (ऊँची जाति से निम्न जाति में गिरना) को जो पुनर्जन्म से संबद्ध किया है, उसके मूल में सामाजिक कट्टरता से अधिक परंपरित समाज को दृढ़ता प्रदान करने की भावना निहित थी। दो चार पीढ़ी के अंतर में ही किसी परिवार-विशेष के उच्च या निम्न जाति में परिवर्तित होने की सामाजिक प्रक्रिया से ये सामाजिक व्यवस्थाकार अनभिज्ञ नहीं हो सकते। ऐसे परिवर्तन चाहे अपवाद-स्वरूप ही होते हों किंतु आर्थिक, राजनीतिक दशा बदलने के साथ ही देशांतर गमन के कारण इस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। किसी राजवंश को क्षत्रिय या ब्राह्मण से उद्भूत प्रमाणित करने के लिए निर्मित कथाओं का उद्देश्य उस वंश को सामाजिक गौरव प्रदान करना तो था ही, साथ ही उनमें भारतीय संस्कृति की रक्षा की भी अपेक्षा होती थी। कुछ पुराकथाओं (मिथकों) में तो यह तत्व विशेष रूप से स्पष्ट है।

हिंदी के प्रसिद्ध कवि चंदबरदाई सहित अनेक अन्य कवियों तथा लेखकों ने अग्निकुल का मिथक प्रस्तुत किया है। इस पुराकथा के अनुसार आबू पर्वत पर विश्वामित्र, गौतम तथा अगस्त्य आदि के यज्ञों की दैत्यों से सुरक्षा के लिए वशिष्ठ मुनि ने प्रतीहार, चालुक्य, परमार तथा अंत में चौहान (चाहमान) को अग्निकुंड से उत्पन्न किया। टाड, स्मिथ भंडारकर आदि इतिहासविदों ने इस मिथकीय धारणा को विदेशी शासक वर्ग को राजपूत जाति में परिवर्तित करने की प्रक्रिया का अंग माना है। इस मिथक में इतनी सत्यता अवश्य है कि यज्ञ या धर्म की रक्षा क्षत्रिय या राजपूत शासकों द्वारा ही संभव मानी गई है। यह भी सच है कि इन चार वंशों को ही वैदिक समाज, विशेषकर ब्राह्मण वर्ग ने विधिवत क्षत्रिय शासक स्वीकार किया है। इस मिथक से इनकी मूल उत्पत्ति का ज्ञान ही नहीं होता, वरन इन वंशों का वैदिक मूल के क्षत्रिय होना असंदिग्ध प्रतीत होता है हालाँकि प्रशस्तिकारों तथा तत्कालीन इतिहासकारों ने इस दिशा में भी उल्लेखनीय प्रयास किए हैं। रत्नपाल के सेवाड़ी ताम्रपत्र में चौहानों की उत्पत्ति इंद्र से बताई गई है। चौहान गोत्राचार में उन्हें सोमवंशी (चंद्रवंशी) और पृथ्वीराज विजय, हम्मीर रासो तथा पृथ्वीराज तृतीय के बेदल अभिलेख में चौहानों को सूर्यवंशी क्षत्रिय घोषित किया गया है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि ये विभिन्न मत एक-दूसरे की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। डॉ० शर्मा का यह तर्क काफी हद तक विश्वसनीय है कि चौहानों को हिंदू-धर्म के लिए संघर्ष करने के कारण क्षत्रिय माना गया है।

यहाँ अग्निकुल मिथक के संदर्भ में रामायण तथा महाभारत में प्राप्त इसी से मिलती-जुलती कथा का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। इस कथा के अनुसार क्षत्रिय शक्ति के प्रतीक विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की गाय नंदिनी के बलात हरण का प्रतिरोध करने के लिए नंदिनी के विभिन्न अंगों से पल्लव (पह्लव), द्रविड़, शक, यवन, शबर, सिंहल, रवस, पुलिंद, चीन, हूण आदि भारतीय तथा विदेशी जाति के सैनिक उत्पन्न हुए। इस मिथक में ब्राह्मण-क्षत्रियों के मध्य विद्यमान द्वंद्व की परंपरा स्पष्ट है किंतु नंदिनी से उत्पन्न विभिन्न जातियों को क्षत्रिय मानने के बजाय उन्हें क्षत्रिय शक्ति के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। मनु ने शक, यवन, लिच्छवि, मल्ल, द्रविड़ चीन आदि अनेक जातियों को मूल रूप से क्षत्रिय, किंतु शूद्र स्तर का माना है। इस शास्त्रीय व्यवस्था तथा परंपरा को हम अग्निकुल मिथक पर आरोपित न भी करें तो भी यह

ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट है कि विदेशी या भारतीय मूल के लोगों का विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्तर पर जात्युपकर्ष (ऊँची जाति में प्रविष्ट होना) तथा जात्यपकर्ष (निम्न जाति में समाहित होना) के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वैदिक परंपरा के प्रसिद्ध क्षत्रियों में अठारह राज्यों को विनष्ट करने वाले महापद्मानंद निम्न जाति के सम्राट थे। बौद्ध-परंपरा में क्षत्रिय होने पर भी (ब्राह्मण ग्रंथों में) मौर्यों को वैदिक क्षत्रिय नहीं माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती कालों में भारी संघर्ष के बाद शुंग, कण्व, सातवाहन, कदंब आदि ब्राह्मण जातियों ने शासन स्थापित किया था। कदंब वंशीय मयूर शर्मन की संतान दो सौ तेरह पीढ़ियों के बाद वर्मन नाम धारण करके जात्यापकर्ष का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इन सभी शासक-वंशों के अतिरिक्त वाकाटक, गुप्त तथा हर्ष प्राचीन वैदिक मूल के क्षत्रिय शासन की परंपरा बिल्कुल ही भंग कर चुके थे, हालाँकि इस मूल के क्षत्रिय सामान्य या विशिष्ट रूप से समाज में अवश्य विद्यमान थे।

इस काल के प्रमुख राजवंशों की उत्पत्ति से संबंधित अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्रस्तुत् किया जा सकता है, किंतु यहाँ पर आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित मतों का विवेचन ही समीचीन लगता है। ऐसा करने का प्रधान कारण तो यही है कि प्रमुख विदेशी इतिहासकारों द्वारा राजपूतों के विदेशी जातियों से उत्पन्न होने के मतों का परीक्षण हम ऊपर कर चुके हैं। दशरथ शर्मा, विश्वंभर शरण पाठक आदि अनेक विद्वानों ने कई राजपूत वंशों की उत्पत्ति ब्राह्मण जाति से मानी है। अभिलेखों के अनुसार भंडोर के प्रतीहार ब्राह्मण हरिश्चंद की क्षत्रिय वंशजा पत्नी भद्रा के वंशज थे। परमार आबु पर्वत के वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण तथा चौहान (चाहमान) वत्स गोत्र के ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। चंदेलों की उत्पत्ति से संबंधित मिथक में उन्हें काशी के राजा पुरोहित चंद्रात्रेय की लड़की से उत्पन्न बताया गया है। अनेक विद्वान ऐसा मानते रहे हैं कि गुहिल जैसे, जिसके संस्थापक बप्पा रावल नागर ब्राह्मण थे, प्रसिद्ध वंश में महाराणा प्रताप का जन्म हुआ था। परवर्ती विद्वानों ने मेवाड़ के इस प्रसिद्ध वंश को भी भगवान रामचंद्र के वंश से संबंधित करके उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रियों से संबंधित करने का जोरदार प्रयत्न किया है।

स्मिथ ने गंभीर शोध के बाद यह मत प्रस्तुत किया है कि गोंड, भर, खरवार नामक जनजाति से चंदेल, राठौर तथा गहड़वाल आदि वंशों की उत्पत्ति हुई है। सैद्धांतिक रूप से यह मानने में कोई असंगति नहीं है कि कृषि, राजनीतिक सत्ता तथा वर्णव्यवस्था के प्रसार के कारण जनजातियों में सामाजिक वर्गीकरण अवश्य हुआ है। गोंड, भर, खरबार, जातियों के पुरोहित तथा उनके अपनी जाति के शासकों द्वारा क्रमशः ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति की सामाजिक स्थिति प्राप्त करने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। किंतु इस परिवर्तन का विशाल जनजाति की अपेक्षा उनके कुछ परिवारों में घटित होना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। क्षेत्र विशेष में मजबूत आर्थिक आधार के कारण, जनजातीय प्रधानों द्वारा राजनीतिक संगठन प्रस्तुत करने के अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। प्राचीन काल से ही नंद, मौर्य, गुप्त, हर्ष तथा अनेक राजपूत शासक इसी जनजातीय परंपरा से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि नवीन आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण वैदिक क्षत्रियों की शासन परंपरा का अंत तथा वर्णव्यवस्था के आधार पर नए क्षत्रिय वर्ग (जाति) की उत्पत्ति एक ऐतिहासिक सत्य है। यहाँ

चौहानों में शासन की विभिन्न इकाइयों तथा उच्च सैनिक पदों पर राजा अपने जाति-परिवार के युवराज तथा अन्य लोगों को अधिक संख्या में नियुक्त करता था, जिसे एक सीमा तक **सजातीय राजतंत्र** (क्लैन मोनार्की- Clan Monarchy) कहा जा सकता है।

इस संदर्भ में राजपूत (महाभारत तथा हर्षचरित में प्रयुक्त राजपुत्र शब्द का अपभ्रंश रूप) शब्द पर विचार करना आवश्यक है। राजपूत अर्थात् राजा का पुत्र व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त होना अधिक स्वाभाविक था, किंतु यहाँ यह जाति विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। निश्चय ही इसका विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्व है। साथ ही मौर्य, गुप्त आदि वंशों को क्षत्रिय साबित करना वर्णव्यवस्था के प्रति विशेष आग्रह का सूचक है। किंतु यहाँ यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है कि अनेक ब्राह्मण या जनजातीय मूल के शासकों को राजपूत प्रमाणित करने की विशेष आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई, जब कि शुंग, कण्व, सातवाहन, वाकाटक, कदंब, गुप्त हर्ष आदि के संबंध में ऐसा नहीं हुआ है। निश्चय ही इसमें अनेक ऐतिहासिक कारण निहित थे, यहाँ जिनका विस्तार से विवेचन संभव नहीं है। इस संबंध में तीन विशेष तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है: प्रथम नवीन शासक वंशों की विशिष्ट सामाजिक चेतना। 'क्षत्रिय' शब्द की भाँति ही 'राजपूत' शब्द भी इतिहास क्रम में जातिसूचक होगा। ऐसी स्थिति में किसी शासक वंश के विशिष्ट या साधारण सजातीय व्यक्ति के लिए 'राजपूत' शब्द का प्रयोग निश्चय ही उसे उस वंश की राजसत्ता के निकट लाता है। इस शब्द के प्रारंभिक प्रयोग का यही अर्थ संभव है। हम मान सकते हैं कि वंश विशेष की सत्ता का मूलाधार उसी जाति के लोग होते थे। यह मूल रूप से जनजातीय चेतना का द्योतक भी है, जो मध्ययुगीन सामाजिक चेतना का हिस्सा था और ये तत्व तुर्कों तथा अफगानों में भी विद्यमान थे। दूसरा तथ्य यह है कि मध्ययुग की शासन-परंपरा ने एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना का निर्माण किया था जिसे हम सुविधा के लिए 'राजपूतसंस्कृति' कह सकते हैं। इस संस्कृति में अनेक तत्व सम्मिलित हैं, जैसे राजपूतों की युद्धप्रियता, शौर्य, क्षमाशीलता, बहुविवाह, प्रशासन में कुशलता, बलिदान की भावना, विशेष प्रकार के रीति-रिवाज, स्थापत्य कला, खान-पान, वेश-भूषा की परंपरा का विकसित होना। तीसरे, विदेशी आक्रमण के विरुद्ध अनवरत युद्ध के कारण ये हिंदू-समाज के राजनीतिक नेता मान लिए गए और राजपूत जाति का विशिष्ट सामाजिक महत्व स्वीकृत हो गया। आगे चलकर इनसे मित्रतापूर्ण व्यवहार करके अकबर ने अपने साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान की।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजपूतों की उत्पत्ति का प्रश्न एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। राजपूत वंशों की उत्पत्ति विदेशी ब्राह्मणों, जन-जातियों या वैदिक क्षत्रियों से होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस सामाजिक प्रक्रिया को कर्म के अनुरूप जात्युपकर्ष तथा जात्यपकर्ष का सैद्धांतिक आधार प्राप्त था। साथ ही इस प्रक्रिया में व्यापक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों से उद्भूत मध्ययुगीन चेतना की ऐतिहासिक अनिवार्यता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।